# प्रेमचंद की विरासत के संदर्भ में संजीव की कहानियाँ

**डॉ0 अजय बिहारी पाठक**
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कुँवर सिंह पी0जी0 कॉलेज, बलिया (उ0प्र0)

***शोध–सार***

*संजीव प्रेमचन्द की परम्परा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। प्रेमचन्द पहले ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने साहित्य को सीधे समाज से जोड़ा। संजीव ने उनकी परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाने का अर्थ है प्रेमचंद के बाद के भारत का यथार्थ चित्रण। स्वातन्त्र्योत्तर भारत का यथार्थ जो प्रेमचंद के बाद का है। बाद के कहानीकारों ने ऐसा किया है, तो हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद की विरासत आगे बढ़ रही है लेकिन इसका मतलब कहीं से यह नहीं कि एक परम्परा में जो चीजें जिस रूप में घटित हुई हों उसी रूप में आगे भी चित्रित हों। प्रेमचंद ने अपने समय में अपने हिसाब से लिखा। बाद में लेखक बदली हुई परिस्थितियों में जीवन की सच्चाइयों को अपने नजरिये से देखते हैं संजीव के पास एक पैनी कथादृष्टि है जिससे वे समकालीन दुनिया के यथार्थ का अपनी कहानियों में चित्रण करते हैं। इसलिए प्रेमचंद की परम्परा के सन्दर्भ में जब हम उनके लेखन पर बात करते हैं तो यह भी चर्चा होनी चाहिए कि उन्होंने प्रेमचंद की परम्परा में क्या विकास किया, उनकी भाषा या शिल्प में क्या नयापन आयज्ञं*

***मुख्य शब्द–*** *साहित्य, प्रेमचन्द, कहानी*

संजीव समकालीन कहानी के एक बड़े रचनाकार हैं, उनकी कहानियों में आजादी के बाद हुए गाँव के हर बदलाव का चित्रण हुआ है। आजादी के बाद गाँवों का पारम्परिक ढाँचा टूटा है, जाति–प्रथा पर प्रहार हुए हैं। संजीव ने अपनी कहानियों का विषय गाँवों की इन्हीं बुनियादी समस्याओं को बनाया है। प्रेमचंद की विरासत को सँजोए हुए वे उनकी परम्परा का सही दिशा में विकास कर रहे हैं।

संजीव ने प्रेमचंद की वैचारिक लड़ाई को आगे बढ़ाया है, प्रेमचंद की विरासत से स्वयं को सम्बद्ध करते हुए संजीव ने एक साक्षात्कार में कहा है– ''मैं प्रेमचंद को पुरातत्व का विषय बनाकर अनर्थक लकीरें खींचते हुए एक व्यर्थ की वंश तालिका बनाकर उसमें ऊँट की तरह घुसपैठ नहीं करना चाहता। .. लकीर परम्परा नहीं होती ... परम्परा विरासत नहीं .... विरासत का पुनर्सृजन होती है ..... परम्परा पुराने और नये के बीच संघातपूर्ण अनुरूपता ..... डायलेक्टिकल सिमिलिच्यूड होती है ...परम्परा व्यक्ति की नहीं होती क्योंकि हो ही नहीं सकती ... परम्परा विचारों की विचारधारा की होती है। परम्परा का निवास उन वैचारिक रूपों, उन मानसिक संरचनाओं में होता है जिसमें प्रेमचंद हिस्सा ले रहे थे और हम भी ले रहे हैं।'' इसी साक्षात्कार में संजीव ने कहा है– ''मैं प्रेमचंद होना नहीं चाहता ...मैं प्रेमचंद को छूना चाहता हूँ, एक बार, सिर्फ एक बार।'' संजीव भी प्रेमचंद के समान ही आम–आदमी की जिजीविषा, उनकी मुक्ति की आकांक्षा एवं जुझारू चेतना में आस्था रखने वाले कथाकार हैं। उनके लिए साहित्य संघर्ष तेज करने का हथियार है, न कि मनोरंजन का साधन।

'अपराध' संजीव की सबसे अधिक चर्चित कहानियों में से एक है। इसमें अपराध पर शोध कर रहा छात्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आज के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त हो चुका है। अपराध करने वाले समाज में सम्मान पा रहे हैं और जो सही मायने में देश भक्त है उसे जेलों में बन्द कर यातनायें दी जा रही हैं। सही और गलत का निर्णय करने वाली न्याय–व्यवस्था भी दूषित हो चुकी है। कचहरी की स्थिति का बेबाक चित्रण करते हुए संजीव ने

लिखा है– ''याद आते हैं ऊँची कुर्सी पर बैठे हुए श्रीहीन जज, सरकारी और मुद्दई पक्ष के वकीलों के बहसने और बिहँसने की कलायें, न्याय पाने की प्रत्याशा में आगत, ऊबती, मुरझाती भीड़, रंडियों के दलालों की तरह आसामी फँसाते हुए वकीलों के दलाल, ड्राअर खोल कर दो–दो रूपयों पर फर्जी मुकद्दमों की तारीख बढ़ाते पेशकार।'' तीस साल का सफरनामा' कहानी में आजादी के बाद बढ़ते जा रहे भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद और आर्थिक शोषण का स्वरूप दिखाया गया है। कहानीकार ने इस भ्रष्ट व्यवस्था में आम आदमी की दुर्दशा को एक गूँगे पात्र 'सुरजा' के माध्यम से दिखाया है। यह विडम्बना है कि सुरजा का जन्म 15 अगस्त 1947 को हुआ जिस दिन देश आजाद हुआ। सुरजा की जिन्दगी के तीस साल स्वराज्य के सफरनामे से मेल खाते हैं। इसलिए सुरजा आजादी के बाद के तीस साल के गाँव का इतिहास, भूगोल, सभ्यता और संस्कृति का एक चलता–फिरता दस्तावेज बन जाता है। स्वतंत्रता के बाद विकास के नाम पर परिवर्तन यही हुआ है कि गरीब और गरीब होता गया और धनी अमीर होते गये। संजीव ने इस कहानी में दिखाया है कि सुरजा के परिवार के पास जो थोड़ी–बहुत जमीन थी वह भी बिक गयी और गाँव के नम्बरदार की जमीन कई गुना ज्यादा हो गयी, सुरजा किसान से मजदूर हो गया और नम्बरदार महाजन।

संजीव की इस कहानी को पढ़ते हुए प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' का 'हलकू' याद आता है। हिन्दी में ऐसी कहानियाँ बहुत कम हैं जो किसी प्रकार की व्याख्या का मोहताज न हों और शुरू से आखिर तक जटिल सामाजिक यथार्थ को सहज, सरल ढंग से प्रस्तुत करती हों। इस कहानी की विशेषता बताते हुए डॉ0 पुष्पपाल सिंह ने लिखा है– ''आजादी के बाद गाँवों का चरित्र, वहाँ पर गाँव के अधिकारी वर्ग, नौकरशाही के छोटे–बड़े अफसर इस प्रकार गाँव के विकास की योजनाओं को बीच में ही लपक लेते हैं और उनका वास्तविक हकदार गाँव का छोटा आदमी उन सबसे वंचित रह जाता है, यह सब यहाँ चित्रित हुआ है।''

'दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी एक ऐसी गरीब महिला को सामने लाती है जो रेलगाड़ी में बिना टिकट मूलियों का गट्ठर लिये यात्रा करती है। कुछ युवक मूलियाँ खा लेना चाहते हैं, टी0टी0 साहिबा उससे कुछ रुपये झटक लेना चाहती हैं और शरीफजादियाँ जो स्वयं बिना टिकट यात्रा कर रही हैं, उस पर हँस रही हैं। डर के मारे उस बुढ़िया को रोते हुए देखकर महमूद नाम का एक युवक लपक कर खड़ा होता है और उस पर हँसने वालों को निरुत्तर कर देता है। उस वक्त गरीब महिला के चेहरे पर जो खुशी दिखायी देती है उसे कहानीकार दुनिया की सबसे खूबसूरत औरत मानता है। प्रकाश मनु लिखते हैं कि– ''इस कहानी का अन्त कुछ इस कदर करुणार्द कर जाता है कि शब्द जैसे गैर जरूरी हो गये हों।''

'प्रेरणा स्रोत' एक स्वाभिमानी और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक महिला की कहानी है। कहानी की जंगली बहू अन्याय का विरोध करती है और अपनी लड़ाई में अद्भुत संकल्पशीलता का परिचय देती है। कहानी की नायिका के चरित्र चित्रण की विशेषता बताते हुए प्रकाश मनु ने लिखा है– ''जंगली बहू का चरित्र जिन नीचाइयों से उठता है और जैसे–जैसे बड़ा होता हुआ वह कहानी और कहानीकार को उलांघ जाता है और खुद कहानीकार से बड़ा हो जाता है, सचमुच रोमांचक है। संजीव का सारा ट्रीटमेंट इतना विश्वसनीय और अनौपचारिक है कि लगता ही नहीं कि आप कहानी पढ़ रहे हैं। यह कहानी को पढ़ना नहीं, कहानी को देखना है।''

सम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी संजीव की कहानी 'अल्ला रक्खा, दरगाह और मूरतें' एक याद रखने योग्य कहानी है। कहानी का नायक 'अल्ला रक्खा' एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें इंसानियत के गुण सारे साम्प्रदायिक विद्वेष के ऊपर चढ़कर बोलते हैं।

संजीव उन चन्द कथाकारों में हैं जो रचना में विचार का संगुम्फन अत्यन्त कुशलता के साथ करते हैं। उनकी कहानियों को पढ़कर पाठक को एक वैचारिक संपन्नता तो मिलती है साथ ही उसे यह अहसास भी होता है कि उसने

कहानी पढ़ी है। उनकी कहानियों के अन्दर कथा–रस बराबर बना रहता है, इसी विशेषता के कारण संजीव की कहानियाँ शुरू से ही बाँध लेती हैं और पूरी कहानी पढ़ने को बाध्य करती हैं। आज–कल की अधिकांश कहानियों में इसी का अभाव दिखता है। कहानी के माध्यम से कितनी गहरी वैचारिक लड़ाई लड़ी जा सकती है, घटनाओं एवं पात्रों के माध्यम से अपने समय में किस प्रकार हस्तक्षेप किया जा सकता है संजीव की कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। डॉ0 बलिराज पाण्डेय ने संजीव की कहानियों की विशेषता बताते हुए लिखा है– ''इनकी हर कहानी वर्ग विरोध को स्पष्ट करती हुयी चलती हैं। इनके पात्रों में जोखिम उठाने की क्षमता है, उनकी सोच के पीछे एक तर्क है, एक दर्शन है। इनके पात्र जीवन से निराश होने वाले नहीं, बल्कि खतरों का सामना करते हुए एक दृढ़ संकल्प वाले हैं। आज हमारे यहाँ व्यवस्था को बदलने का जो संघर्ष छिड़ा हुआ है, संजीव की कहानियाँ उसी संघर्ष को परिभाषित करती हैं।''

संजीव की कहानियाँ समाज की विडम्बनाओं को बेहतर ढंग से उभारती हैं और लेखक के सामाजिक सरोकारों, अनुभव की प्रामाणिकता का सबूत देकर प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाती हैं। समकालीन कहानी की दशा–दिशा विषय पर हुयी गोष्ठी में बोलते हुए संजीव ने कहा है– ''हिन्दी कहानी अपने प्रस्थान बिन्दु से लेकर आज तक समय के गतिमान यथार्थ को पकड़ने में कभी नहीं चूकी। प्रेमचंद के जमाने का क्षितिज जितना व्यापक था उससे ज्यादा व्यापक है आज का क्षितिज।'' कहना नहीं होगा कि संजीव की कहानियों ने प्रेमचंद की परम्परा में नया आयाम जोड़ा है।

'तिरबेनी का तड़बन्ना' सपाट क्रान्तिकारी आशावाद की कहानी है। कहानी 'जमीन उसकी जो उसे जोते–बोए' के फार्मूले 'तड़बन्ना उसका जो ताड़ी उतारे' पर गढ़ी गयी है। कहानी का नायक 'तिरबेनी' जिस तरह जोश में तड़बन्ने के आखिरी छोर की ऊँचाई पर चढ़ कर उल्टा झूल जाता है और चमत्कारिक ढंग से ऊपर से गिर कर भी बच निकलता है, वह कहानी के अन्त को अविश्वसनीय बना देता है।

डॉ0 शम्भुनाथ ने इस विषय में लिखा है– ''भाषा की गँवई ठसक और सौन्दर्यात्मक बिम्बों में यह क्रान्ति का ऐसा रूपवाद खड़ा करती है जो अन्तिम अधर में चमत्कार का मजा देता है। क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए संजीव ने तिरबेनी को इतना उत्साही और आशावान बना दिया है कि नशे में वह ताड़ पर उल्टा झूल गया। सिनेमा शैली के क्लाइमेक्स पर नीचे मजमा भी लगा गया। दृश्य को अन्ततः सुखान्त भी होना ही था।''

इस तरह की कहानियों के संदर्भ में शम्भुनाथ की बहुत सटीक टिप्पणी है कि ''यहाँ इन कहानीकारों के लिए फिर से प्रेमचंद से कुछ सीखने की जरूरत महसूस होती है। उन्होंने अपने कथासाहित्य में माडल यथार्थवाद का मलबा कभी नहीं जमने दिया, विशेषज्ञता की जगह हरफनमौला को अपना लक्ष्य बनाया, विशेष अंचलों को नहीं– समग्र समाज और सामाजिक विकास को अपनी नजर के सामने रखा, कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर, अपने यथार्थवाद को लगातार नवोन्मेषों से जोड़ा, विश्वासों और विडम्बनाओं दोनों से टकराते रहे और सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि वह बीच में थके–टूटे नहीं। भारतीय यथार्थों की एक बहुत बड़ी दुनिया अपने अन्तर्विरोधों और सम्भावनाओं के साथ जो एक बार फिर व्यापकता से अभिव्यक्त होने लगी है, उसके अभी कई दौर आयेंगे और जायेंगे। जीवन की ही तरह, जीवन की कहानी का सिलसिला कभी खत्म नहीं हो सकता। यथार्थवाद भी अपराजेय है क्योंकि उसमें केवल यथार्थ नहीं होता, यथार्थ का भी यथार्थ होता है, जिसे जनता की आँखें सदैव खोजती हैं।''

लेकिन मानव मुक्ति के संघर्ष के साथ संजीव का जुड़ाव महत्त्वपूर्ण है। वे धीरे–धीरे इन अन्तर्विरोधों से मुक्त भी हुए हैं। जहाँ उनकी अनेक कहानियाँ जाने–पहचाने जीवन के कटु यथार्थ और जन संघर्षो के जीते–जागते अहसासो के बीच खड़ी मिलती हैं। इन सामान्य के जीवन संघर्षों की विषमता को अभिव्यक्ति देना समकालीन कहानी का केन्द्रीय स्वर रहा है। अतः

वर्गीयचेतना को प्रस्तुत करने वाली इन कहानियों को फार्मूलाबद्ध कह कर खारिज भी नहीं किया जा सकता है। अपनी सारी सीमाओं के बावजूद ये प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाती हैं। प्रेमचंद की परम्परा पर विचार करते हुए डॉ0 राम नारायण शुक्ल ने लिखा है– ''प्रेमचंद की केन्द्रीय अन्तर्वस्तु किसान और मजदूरों के जीवन–संघर्षों को रचनात्मक रूप देने से तय होगी। प्रेमचंद के बाद किसान और मजदूर कथा साहित्य से अलग खड़े कर दिये गये हैं। किसी ने यदि कहीं किसी किसान या मजदूर चरित्र को कहानी का पात्र बनाया भी तो चरित्र की विशिष्टता को जो अब तक नहीं देखी गयी है, उस वैचित्र्य को रचनात्मकता प्रदान करना जिससे कथासाहित्य में एक नवीनता पैदा हो, उनका मकसद बना। प्रायः कहानियाँ मध्यवर्ग या निम्नमध्यवर्ग की बारीकियों तक को दिखाने में सिमट गयी हैं। दूसरे किसान मजदूर को मात्र चरित्र बना देने से प्रेमचंद–परम्परा विकसित नहीं की जा सकती है। प्रेमचंद की साहित्यिक सोद्देश्यता को बदली हुयी परिस्थितियों में पुनर्जीवित करना मुख्य बात है। जनता का जीवन जिस साहित्य की अन्तर्वस्तु बनेगा उस साहित्य को हम चाहे जो भी नाम दें, लेकिन वह साहित्य जब अपनी परम्परा से जुटेगा तो हिन्दी में वह प्रेमचंद–परम्परा ही होगी।''

## संदर्भ सूची

1. कथादेश, सितम्बर 1997, पृष्ठ–22
2. कथादेश, सितम्बर 1997, पृष्ठ–22
3. संजीव : तीस साल का सफरनामा, पृष्ठ–19
4. डॉ0 पुष्प पाल सिंह : समकालीन कहानी, पृष्ठ–214
5. दस्तावेज (त्रैमासिक), अंक 82, जनवरी–माच 1999, पृष्ठ–12
6. दस्तावेज (त्रैमासिक), अंक 82, जनवरी–माच 1999, पृष्ठ–30
7. डॉ0 बलिराज पाण्डेय : कहानी आंदोलन की भूमिका, पृष्ठ–162
8. हंस (मासिक) अक्टूबर 1989, पृष्ठ–19
9. सं0 डॉ0 रामकली सर्राफः समकालीन कहानी की रचनात्मक अन्तर्दृष्टि, पृष्ठ–68
10. सं0 डॉ0 रामकली सर्राफः समकालीन कहानी की रचनात्मक अन्तर्दृष्टि, पृष्ठ–69
11. सं0 डॉ0 रामकली सर्राफः समकालीन कहानी की रचनात्मक अन्तर्दृष्टि, पृष्ठ–91–92।